International Journal of Arts, Humanities and Social Studies
www.socialstudiesjournal.com
Online ISSN: 2664-8660, Print ISSN: 2664-8652; Impact Factor: RJIF 5.42
Received: 15-07-2019, Accepted: 25-08-2019, Published: 26-08-2019
Volume 1, Issue 2, 2019, Page No. 40-44

संजीव कौशल की कविता और सामाजिक सरोकार

डॉ॰ जसवीर त्यागी
एसोसिएट प्रोफ़ेसर, हिंदी–विभाग, राजधानी कॉलेज, राजा गार्डन, दिल्ली, भारत

प्रस्तावना

कोई भी साहित्य अपने परिवेश और देशकाल से कटकर नहीं रचा जा सकता है। रचनाकार अपने समय और समाज से जुड़कर ही सार्थक लेखन करता है। लेखक का समाज के प्रति संवेदनशील होना उसका लेखकीय दायित्व है। लेखक समाज में व्याप्त अंधकार को अपने शब्दों की रोशनी देता है। वह दबे–कुचले, शोषित, पीड़ित समुदाय के लोगों के साथ खड़ा होता है। रचना में लेखक के सामाजिक सरोकार व्यक्त होते हैं। कोई भी रचना सिर्फ़ शब्दों का सामूहिक संग्रह नहीं होती है, उसमें मनुष्यता को बचाने की शक्ति भी होती है। जिस रचनाकार में यह शक्ति जितनी ज़्यादा होती है, वह उतना ही सफल रचनाकार माना जाता है। संजीव कौशल समकालीन हिंदी कविता के महत्त्वपूर्ण कवि हैं। 'उँगलियों में परछाइयाँ' उनका प्रथम काव्य–संग्रह है, जो साहित्य अकादमी दिल्ली से प्रकाशित है। संजीव संघर्ष में आस्था और आशा रखने वाले कवि हैं। आज बहुत सारे लेखक क़लम को दरकिनार कर सीधे कम्प्यूटर पर लिखना पसंद करते हैं, वहीं ऐसे में वे 'कविता का जीवन' शीर्षक कविता में लिखते हैं –

"कम्प्यूटर की सपाट स्क्रीन के बजाय
काग़ज़ पर लिखना पसंद है मुझे
कि ज़िंदा रहते हैं वहाँ
सारे सबूत संघर्ष के।"[1]

संघर्ष मनुष्य को सहज, सरल, संवेदनशील और सफल बनाता है। संघर्ष को ज़िंदा रखना संजीव की प्रकृति है। वे आज़ादी के सही मायने समझाते हुए 'आज़ादी का स्वर्ग' कविता में कहते हैं–

"क्योंकि बेहतर है
ज्ञान की ज़मीं, अज्ञान के स्वर्ग से
कि मीठा है ज्ञान का फल, स्वर्ग के मिष्ठानों से
जहाँ है आज़ादी, वहीं है स्वर्ग"[2]

पराधीन मनुष्य को सपने में भी सुख नहीं मिलता है। संजीव कौशल अपनी कविताओं में मनुष्य की आज़ादी पर बहुत बल देते हैं। वह आज़ादी हमारी अपनी बहनों की आज़ादी से लेकर, फिलिस्तीन के लोगों की आज़ादी तक जुड़ी है। 'रक्षाबंधन' कविता में वे लिखते हैं –

"चलो रक्षाबंधन पर इस बार
इस तरह सोचें कि बहनों को सोचने की आज़ादी मिल जाए।"[3]

भारतीय समाज इतना पेचीदा है कि बहनों अर्थात् महिलाओं के प्रति अपनी सोच में वह आज भी बहुत उदारवादी नहीं है। वह उन्हें बहुत कुछ दे सकता है, लेकिन अपने तरीक़े से सोचने और जीने की आज़ादी नहीं दे सकता। पर संजीव ऐसा नहीं सोचते, वे रक्षाबंधन के पावन पर्व पर बहनों को आज़ादी का अनुपम उपहार देना चाहते हैं। वे समदर्शी लेखकीय धर्म का निर्वाह करते हैं। उन्हें रूढ़िवाद आडंबर में लिप्त धर्म अस्वीकार है। वे 'धर्म की बात मुझसे मत करना' कविता में मानव विरोधी धर्म पर तीखा प्रहार करते हैं।

संजीव अपनी कविताओं में 'देशप्रेम के मायने' भी अलग दृष्टिकोण से देखते हैं, उनका मानना है कि मकान बनाने वाले, सड़क बनाने वाले, सब्जी–फल, अन्न पैदा करने वाले, कपड़ा और किताब तैयार करने वाले मनुष्यों को निःस्वार्थ भाव से प्रेम करना ही सच्चा देश प्रेम है। संजीव का देश प्रेम वाणी प्रधान नहीं, कर्म प्रधान है। उनका विचार है –

"ये लोग ही हैं जिन्होंने बनाया है सारा जहा
यही हैं जो बनाते हैं गाँव शहर देश
यही है देश मेरे लिए
कि इसके बिना कोई देश संभव नहीं
अगर करना है तो इन्हीं से करो प्रेम
कि देश प्रेम के असली मायने यही है"[4]

सुप्रसिद्ध कवि कुंवरनारायण लीलाधर मंडलोई से बात करते हुए समकालीन कविता पर अपने विचार कुछ इस तरह से अभिव्यक्त करते हैं – "समकालीन कविता ने हमारा ध्यान जिस तरह से उपेक्षित वर्ग की तरफ़ मोड़ा है, यह बहुत बड़ी बात है।"[5] कुंवरनारायण के कथन के आलोक में जब हम संजीव कौशल की कविताओं का मूल्यांकन करते हैं, तो वे इस कसौटी पर खरी उतरती हैं। उनकी कविता में व्यक्त सामाजिक सरोकार अपने समय और समाज की विडंबनाओं को खुली आँखों से देखते हैं। उनकी कविता आम आदमी के दुःख–दर्द को आवाज़ देती हैं। 'गुब्बारे' कविता में एक ग़रीब बालक की पीड़ा को वे कुछ इस तरह से शब्दबद्ध करते हैं –

"डंडे से बंधे–बंधे उड़ते
गुब्बारों–सी
उड़ रही थीं बाहें उसकी
उड़ते बाल
उड़ते साल
उड़ते कदम
उड़ते स्वप्न
सब कुछ उड़ रहा था
टूटे बर्तनों की शर्ट के साथ"[6]

प्रस्तुत कवितांश में बालक का सब कुछ उड़ता हुआ साफ़–साफ़ नज़र आ रहा है, लेकिन कवि की संवेदनशीलता उड़ती हुई नहीं दिखती, वह स्थिर है। पाठक को अंदर तक झकझोर देती है, विवश करती है कि यह कैसा संवेदना–शून्य समाज है – जो 'आज के बालकों को कल के नेता' की बजाय मज़दूर और दास बना देना चाहता है। संजीव की यह कविता पढ़ते हुए वरिष्ठ कवि राजेश जोशी की लोकप्रिय कविता 'बच्चे काम पर जा रहे हैं' का स्मरण हो आया। दोनों कविताएँ बाल–शोषण का मार्मिक चित्रण करती हैं।

संजीव की एक कविता 'चूल्हे' शीर्षक से है। कविता की शुरुआत कुछ इस तरह से होती है –

"आग के घर हैं चूल्हे

जहाँ घरेलू बनती है आग
चूल्हे जहाँ भी होते हैं
घरों में तब्दील हो जाती हैं वे जगहें
दीवारों के बगैर
कि घरों के नींव होते हैं चूल्हे
जिनके कंधों पर जन्म लेना है समाज"[7]

जैसे जल का घर तालाब, सरिता, समंदर है। पत्ते, फूल और फल का घर दरख़्त है, उसी तरह कवि का मानना है कि आग का घर है चूल्हे। 'घर' एक ऐसा शब्द है जहाँ कोई भी प्राणी स्वयं को सर्वाधिक सुरक्षित महसूस करता है। आग भी सबसे ज़्यादा चूल्हे में महफूज है। मनुष्य घर से जुड़कर ही सफल–सार्थक बनता है। आग का सौंदर्य चूल्हे में है। घरों की नींव होते हैं चूल्हे, जिनके बूते समाज निर्माण की प्रक्रिया आगे बढ़ती है। कवि कविता में आगे लिखते हैं –

"दुनिया में ऐसी कोई जगह नहीं
जहाँ चूल्हे न हों
इंसानों के पहले दोस्त हैं वे"[8]

सभ्यता के विकास में मानव का बहुत बड़ा योगदान है। चूल्हे मानव–विकास में दोस्त बनकर अहम भूमिका अदा करते हैं। कवि ने चूल्हे को इंसानों का पहला दोस्त कहा है। प्रस्तुत पंक्तियाँ कवि की चूल्हे और दोस्त के प्रति प्रगाढ़ता का परिचायक है –

"चूल्हों पर कभी नहीं रखता कोई पैर
और जो उजाड़ते हैं दूसरों के चूल्हे
छोड़कर चले जाते हैं चूल्हें उन्हें"[9]

चूल्हों पर कोई पैर नहीं रखता। चूल्हों में अन्नपूर्णा का वास है। लोक में जैसे झाड़ू को पैर नहीं लगाया जाता, वह लक्ष्मी स्वरूपा है, समृद्धि का सूचक है। झाड़ू पर पैर रखना अशुभ माना जाता है, क्योंकि झाड़ू दुनिया को साफ़–स्वच्छ बनाती है। रहने–जीने लायक़ बनाती है। वह प्रेम और प्रेरणा की हकदार है। चूल्हे भी हमें जीवन देते हैं, रिश्तों की मिठास वहीं से पैदा होती है। कवि का मानना है–

"एक चूल्हा हमें भी चाहिए अपने भीतर
कि बचाई जा सके
चारों तरफ़ फैली हुई आग
बचाया जा सके जीवन का स्वाद
आँखों की नमी, जुबां की मिठास
कि जब नहीं रहते चूल्हे हमारी कल्पनाओं में
तभी लगती है आग
कि चूल्हे ही हैं जो करते है अलग
इंसानी बस्तियों को जानवरों के झुंडों से"[10]

कवि मनुष्यता को बचाये रखने वाली संवेदना के चूल्हे को बचाकर रखने की बात करता है। जिस प्रकार स्वाद चूल्हे में सुरक्षित है, उसी प्रकार मनुष्य का सौंदर्य भी मनुष्यता को बचाये रखने में है। संजीव कौशल सामाजिक सरोकारों को सहर्ष स्वीकार करते हैं। कविता में जन साधारण के सुख–दुःख की अभिव्यक्ति करना उनका काव्य–प्रयोजन है। संजीव की कविता के बारे में वरिष्ठ कवि राजेश जोशी का कहना है – "संजीव की कविता जीवन के अलक्षित दृश्यों के पीछे छिपे–ढके सच को देखने की नज़र देती है।"[11] राजेश जोशी संजीव की कविता में जिसे जीवन के अलक्षित दृश्यों के पीछे का सच कहते हैं, वास्तव में वे कवि के सामाजिक सरोकार हैं, जो उनकी कविता को सामाजिक सोद्देश्यता प्रदान करते हैं। संग्रह की एक चर्चित कविता है 'हंडेवाले'। उसमें दूसरों की ज़िंदगी में रोशनी करने वाले मेहनतकश 'हडवाले' लोग क्यों सदा अंधकार में जीवन जीने के लिए अभिशप्त हैं –

"अपने सरों पर लादे रहते हैं ये
हंडे रोशनी के
फिर भी
कितने ओझल हैं इनके चेहरे
कि ये दिखते ही नहीं
एक से लगते हैं सभी
चेहरे अँधेरे के"[12]

अँधेरे के सभी चेहरों का एक जैसा लगना कितनी बड़ी त्रासदी है। संजीव अपनी कविता में इसी पीड़ा को वाणी देते हैं। ऐसी ही एक अन्य कविता है 'घर बनाने वाले' आजीवन दूसरों के लिए घर बनाने वाले ये लोग कभी–कभी खुद बेघर रह जाते हैं –

"ईंट और गारे के खेल में ये पतीले
चिपकते नहीं हैं कहीं
बस चलते रहते हैं हरदम
हाथों की मानिंद
दीवारों पर
सारी ज़िंदगी"[13]

मराठी कवि विंदा करंदीकर का मानना है कि "कविता सामान्य श्रोतागण से दूर गयी तो वह ज़्यादा समय ज़िंदा नहीं रह पायेगी।"[14] इस कथन की कसौटी पर संजीव की कविताएँ खरी उतरती हैं। उनकी कविताएँ घर–परिवार, समाज, देश तक विस्तार पाती हैं। अपने बेटे 'नन्हीं' पर लिखी उनकी कई कविताएँ नैसर्गिक सौंदर्य में सहज ही पाठकों को आकर्षित करती हैं। ऐसी ही एक कविता है 'नाव' –

"किताबों से धूल झाड़ते हुए
कल एक नाव मिली
नन्हीं की
विचारों के भंवरों में फँसी
जूझती हुई
मैंने ज़रा–सा सहलाया उसे
और वो मेरी हथेलियों पर तैरनी लगी"[15]

नाव कविता पढ़ते हुए मुझे दो प्रसंग याद आये। पहला आलोचक गुरुवर डॉ॰ विश्वनाथ त्रिपाठी जी और कवि नागार्जुन के मध्य है। नागार्जुन त्रिपाठी जी के आवास पर सप्ताह भर से ठहरे हुए थे। त्रिपाठी जी नागार्जुन पर लिखे अपने संस्मरणात्मक लेख में कहते हैं – "मेरी बड़ी नातिन चार–पाँच साल की थी। उससे नागार्जुन की सबसे ज़्यादा पटी। एक दिन तीसरे पहर मैं भोजनोपरांत शयन के बाद उठा तो देखा, नागार्जुन बहुत देर तक फ़र्श पर पड़ी किसी चीज़ को बड़ी गंभीरता से देखने में तन्मय थे। समाधि लगी हो मानो। जब उन्हें मेरी आहट मिली तो बोले, देखो कविता है यह। नातिन की छोटी–छोटी चप्पलों को वह देख रहे थे। रचना–समाधि में लीन उनका चेहरा मैं कभी नहीं भूल सकता।"[16] दूसरा प्रसंग मेरे सहकर्मी कवि मित्र महेन्द्र सिंह बेनीवाल का है। कॉलेज जाने से पूर्व सुबह हम दोनों एक बार फोन पर बात करते हैं। इसी क्रम में तैयार होने से पूर्व एक दिन महेन्द्र जी घर की अलमारी में अपने कपड़े खोज रहे थे, उनके हाथ में अपने तीन–चार साल के बेटे का बनियान आ गयी। वे छोटी–सी बनियान को देर तक हाथों में थामे एकटक निहारते रहे। शिशु से जुड़ी अनेक स्मृतियाँ संवाद करने लगीं। वे वात्सल्य के झरने में अविरल भीगते रहे। महेन्द्र जी ने यह प्रसंग मुझसे साझा किया। उपरोक्त दोनों प्रसंग संजीव कौशल की 'नाव' कविता से जुड़ते हैं। यहाँ तीन अलग–अलग स्थानों के व्यक्ति हैं। नागार्जुन,

महेन्द्र सिंह बेनीवाल और संजीव कौशल। तीनों कवि हैं। तीनों प्रसंगों में क्रमशः रबर की चप्पल, कपड़े की बनियान और काग़ज़ की नाव हैं। तीनों वस्तुएँ हैं, लेकिन तीनों के बीच एक बात कॉमन है, और वह है बच्चा। बच्चों से जुड़कर तीन भिन्न–भिन्न निर्जीव वस्तुएँ सजीव संवेदना का हिस्सा हो गयी हैं। स्मृतियों से जुड़कर कविता बन जाती है। हम यहाँ तीन कवियों की काव्य–दृष्टि को परस्पर परंपरा से आबद्ध हुआ भी देख सकते हैं। ऐसे में समकालीन हिंदी कविता पर आलोचक परमानंद श्रीवास्तव का कथन सर्वथा उपयुक्त जान पड़ता है – "मानवीय संबंधों के अमानवीकरण के विरुद्ध कविता एक बार फिर रचनात्मक हस्तक्षेप के रूप में अपनी पहचान बना सकी है।"[17] संजीव कौशल की कविता की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता है कि कवि बहुत सामान्य साधारण चीज़ों को भी संवेदना के दायरे में ले आते हैं। इस अर्थ में उनकी कविताएँ अपने समय, परिवेश और सामाजिक सरोकारों के प्रति गहरी मानवीय संवेदना का प्रमाण देती हैं।

संजीव एक ज़िम्मेदार परिवारी हैं, परिवार की अहमियत उनको पता है। माँ–पिता का परिवार के प्रति किया गया श्रम–संघर्ष, तप–तपस्या उनकी काव्यात्मक शक्ति बनकर चमकता है। उनकी 'माँएँ होती हैं चीटियाँ' कविता बहुत सूक्ष्मता और कुशलता से माँ और चीटियों के जीवन–संघर्ष को मार्मिकता से प्रस्तुत करती है –

"चींटियों को मरते नहीं देखा है मैंने
और नहीं देख पाते हैं हम
माँओं को मरते हुए
ईंधन–सी
घर भट्टी में
माँएँ होती हैं चीटियाँ
कि जाने–अनजाने कुचल दी जाती हैं
बेख़बर पैरों से
चीटियों की तरह"[18]

माता–पिता, घर–गृहस्थी की गाड़ी के वे दो पहिये हैं, जो निरंतर चलायमान रहते हैं। संजीव सिर्फ़ माँ का त्याग, बलिदान ही नहीं देखते, वे पिता का संघर्ष भी समझते हैं –

"जब से देखा कुछ इस तरह देखा
कि पिता और धूल साथ–साथ दिखे
एक अजीब रिश्ते में बँधे हुए
एक दूसरे के साथ
एक दूसरे को मात देते हुए"[19]

संजीव की पिता पर लिखी कविता पढ़ने के बाद कवि कुमार अम्बुज की 'पिताओं के बारे में कुछ छूटी हुई पंक्तियाँ' कविता और कथाकार ज्ञानरंजन की 'पिता' कहानी सहज ही स्मृतियों में उतर आती हैं।

संजीव का अधिकांश समय यात्राओं में गुज़रता है। वे दिल्ली से अलीगढ़ और अलीगढ़ से दिल्ली का सफर तय करते हैं। 'अलीगढ़' कविता की शुरुआत वे कुछ इस तरह से करते हैं –

"अलीगढ़ यूँ ही चला आता है
मेरी बातों में आजकल
ऐसे जैसे सांस ली
कब ली क्यों ला
कुछ पता नहीं
ऐसे ही आता है अलीगढ़"[20]

हर रचनाकार की अपनी एक स्थानीयता, आँचलिकता होती है। वह लेखक की शक्ति भी बनती है, और पहचान भी। इस अर्थ में संजीव और अलीगढ़ को एक–दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता। उनकी कविताओं में अलीगढ़ की छाप दिखती है। कभी–कभी यात्राओं का स्थान परिवर्तन भी होता है। बहरहाल संजीव की कविताओं में यात्राओं के दौरान देखे गये दृश्यों और अनुभवों की छवियाँ उभरकर आती हैं। उनकी कविताओं में यात्राओं का यथार्थ है। 'कविता इस समय' पर अपने विचार व्यक्त करती हुई कवयित्री नीलेश रघुवंशी कहती हैं – "कोई भी बेहतर कविता वह चाहे वरिष्ठ कवि की हो या एकदम नए कवि की .... वह अपनी धरती अपनी ज़मीन पर खड़ी होती है। जिसके पास अपनी ज़मीन होती है आकाश भी उसी का होता है। कविता को बरहमेश समाज और उसके परिवेश के मध्य देखना चाहिए। एक साधारण से साधारण मनुष्य अपने लोकाचार, रीतिरिवाज, अपने क्षेत्र, अपने आसपास से जुड़ा होता है।"[21] इस दृष्टि से देखा जाये तो संजीव कौशल में अपनी जड़ और ज़मीन के प्रति एक काव्यात्मक विकलता दिखती है।

व्यंग्य रचनाकार की शक्ति है। संजीव भी अपनी अनेक कविताओं में व्यंग्य की विशिष्टता का परिचय देते हैं। उनकी एक कविता है – 'मच्छर नहीं है वे' संजीव लिखते हैं –

"कान पर एक मच्छर
भिनभिनाया
मैंने एक जोरदार थप्पड़ लगाया
वो फिर भिनभिनाया
मैंने फिर एक जमाया
खुद को खुद से पिटवाने के
मास्टर हैं ये ....
जब एक छोटा मच्छर है
इस कदर ख़तरनाक
तब बड़ों के बारे में ज़रा सोचिए जनाब"[22]

ऐसी ही एक कविता है – 'हथौड़ा बनाने वाले"। वे हथौड़ों से लेकर देवताओं तक सब कुछ ढालते हैं। लेकिन अगर उन्हें अपनी बनायी गयी किसी भी चीज़ में कोई रेशा, बाल बराबर भी कमी दिख जाये, तो वे अपने ही हाथों से मसल तोड़ डालते हैं उसे –

"तो बड़े खरे हैं ये
सौदागर देवताओं के
कि नहीं देख सकते ये
एक भी चटक शख्सियत में देवताओं की ....
इतने खरे हैं ये
कि देवताओं को भी
बजाकर देखते हैं हर तरफ़"[23]

संजीव कौशल ने 'दास्तानों–सी दिल्ली' सीरिज के अंतर्गत दिल्ली से संबंधित अनेक विषयों पर कविताएँ लिखी हैं। ये कविताएँ दिल्ली की अनेक खूबियों और विशेषताओं का खुलासा करती हैं। उनमें राष्ट्रीय संग्रहालय, कुतुबमीनार, यमुना, शनि बाज़ार, कतारें, संडे मार्केट, अम्मा की रसोई, रावणों का बाज़ार और सड़क के बच्चे प्रमुख हैं। ये कविताएँ अपनी अंतर्वस्तु द्वारा समय और समाज की सच्चाईयों को उजागर करती हैं। इस दृष्टि से संजीव की कविताएँ सच्चे अर्थों में जीवनधर्मी कविताएँ कही जा सकती हैं। रावणों का बाज़ार और सड़क के बच्चे, सीरिज में लिखी कविताएँ अपने वैशिष्ट्य और वैविध्य में पाठकों की स्मृतियों में सहज ही स्थान बनाने में सफल होती हैं। दिल्ली के तितारपुर के नज़दीक सुभाष नगर इलाके में रावणों का बहुत बड़ा बाज़ार लगता है। संपूर्ण दिल्ली के रावण यहीं बनते हैं। छोटे–बड़े, पतले–मोटे, हल्के–भारी, सब तरह के रावण यहाँ उपलब्ध हो जाते हैं। कवि संजीव कौशल लिखते हैं –

"रावणों का बाज़ार लगता है
सुभाष नगर की पटरियों पे
सड़क के दोनों तरफ़

रावण ही रावण
एक–से–एक मज़बूत
और टिकाऊ रावण"[24]

प्रस्तुत काव्यांश में कवि की भाषा पर बाज़ार के प्रभाव का कमाल देखिए, किस प्रकार रावण को भी बेचने में कारगर सिद्ध होती है। इसी कविता में आगे चलकर व्यंग्य का फूटता हुआ पटाखा दूर से ही चमकता है –

"दूर दूर तक जाते हैं ये
दिल्ली की मंडियों से
कि इनकी बढ़ती डिमांड को देखते हुए
कई और लगाई गई है फैक्ट्रियाँ यहाँ
ताकि कमी न रहे रावणों की पूरे देश में कहीं
और सभी को मिल जाए
अपने हिस्से का रावण
आसानी से"[25]

'उँगलियों में परछाइयाँ' की भूमिका में कवि राजेश जोशी लिखते हैं – "कविताओं की एक और श्रृंखला है – रावणों का बाज़ार। अपने समय और आसपास की जीवन की विडंबनाओं को पकड़ने की यह कोशिश संजीव के पक्ष और पक्षधरता, दोनों का साक्ष्य है। इन रावणों की मांग लगातार बढ़ रही है और इसलिए इन्हें बनाने की कई फैक्ट्रियाँ लग गई हैं और दिल्ली की मंडियों से ये रावण देश के तमाम हिस्सों में भेजे जा रहे है। ताकि हर एक को अपने–अपने हिस्से का रावण मिल सके। व्यंग्य और गहरी करुणा संजीव की कविता में बिना बलाघात के प्रवेश करते हैं और पाठक को कहीं बहुत भीतर तक बेचैन करते हैं।"[26]
दिल्ली की सड़कों पर हज़ारों बेघर ग़रीब, भूखे बच्चे भीख मांगते हुए देखे जा सकते हैं उनका कोई भविष्य नहीं है। उनकी सुध लेने वाला न समाज है और न ही सरकार। कवि के हृदय को यह बात बहुत कचोटती है। बकौल संजीव–

"सड़क कहीं नहीं जाती
पड़ी रहती है यूँ ही चटाई–सी
जिस पर खेलते रहते हैं ये
करते रहते हैं कला बाजियाँ
सारी ज़िंदगी
चौराहों पर रहते हैं
मगर बेकार हैं"[27]

कवि विनय विश्वास अपनी आलोचनात्मक पुस्तक 'आज की कविता' में लिखते हैं – "दमित बच्चे हों या स्त्री, दलित हों या ग़रीब, जो बोल नहीं सकते कविता उनकी आवाज़ बनती है। यह आवाज़ सवाल भी उठाती है। संकेत भी करती है। वक्तव्य भी देती है। चित्र भी दिखाती है। प्रसंग भी सुनाती है। ... दमित के पक्ष में कुछ भी कर सकती है, करती है।"[28] संजीव कौशल 'सड़क के बच्चे' कविता में दमित बच्चों के चित्र उतारते हैं, उनकी पीड़ा को आत्मसात कर शब्दों में आबद्ध करते हैं, और उनके पक्ष में आवाज़ उठाते हैं।
संजीव की कविता में कई बार नयी उपमाएँ और बिंब सहजता से उतर आते हैं, जैसे 'एक छोटी–सी हँसी' कविता में कवि कहता है –

"एक छोटी–सी हँसी
उसके ऊपर एक छोटा–सा चश्मा
चश्मे के भीतर मुस्कुरातीं
दो बातूनी आँखें
जिनकी बातों की खनक
बढ़ती ही जाती है
किसी तिब्बती प्याले के संगीत की तरह
घन घन करते हुए
अपनी गिरफ़्त में लेती हुई"[29]

तिब्बती प्याले से पैदा होने वाला संगीत नवीनता लिए हुए है। ऐसे ही 'पूरी नींद' कविता का दृश्य बिंब पाठक को अपनी आँखों के सम्मुख उपस्थित होता हुआ दिखता है –

"भीड़ की भीड़ उतरती है
ट्रेनों से
जैसे छूटकर भागे हो विचार
दिमागों से।"[30]

संजीव कौशल उत्तर प्रदेश के अलीगढ़ से आते हैं, उनकी भाषा में अलीगढ़ की छाप है। अंग्रेज़ी साहित्य के प्रोफ़ेसर होने के नाते उनकी भाषा में एक 'वाइडर एप्रोच' है। कविता में वे बोलचाल की हिंदुस्तानी भाषा का प्रयोग करते हैं। किसी रचनाकार का मूल्यांकन करते हुए देखना चाहिए कि वह अपनी रचना किस वर्ग के समाज के लिए लिख रहा है। अगर उसका पाठक जनसाधारण है, तो लेखक की भाषा में आत्मीयता और सादगी का सौंदर्य होगा। संजीव की काव्य–भाषा कुलीनतावाद का विरोध करती है। उनकी भाषा साधारण–जन के साथ चलती है।
सार रूप में हम पाते हैं कि संजीव कौशल के काव्य में श्रमशील समाज के अनेक मेहनतकश, कर्मठ लोगों पर कविताएँ हैं, जैसे चायवाले, हंडेवाले, फेरीवाला, घर बनाने वाला, खिलौने वालियाँ, बम्बई वाली, अम्मा की रसोई, घड़ीवाला इत्यादि। ये कविताएँ अपने श्रम–सौंदर्य से पाठकों को प्रेरित और उद्वेलित करती हैं। उनकी कविताओं में आज़ादी, ख़्वाब, संघर्ष, बहार जैसे शब्द कवि के सामाजिक सरोकारों के परिचायक हैं। कहना न होगा अगर किसी कवि के काव्य में ख़्वाब और उम्मीद सरीखे शब्द बचे हैं, तो समझना चाहिए कि दुनिया में बहुत कुछ बचा हुआ है।

संदर्भ

1. कौशल, संजीव, उंगलियों में परछाइयाँ, (2017), साहित्य अकादमी, दिल्ली, 2017, पृष्ठ–2
2. वही, पृष्ठ–17
3. वही, पृष्ठ–52
4. वही, पृष्ठ–26
5. मंडलोई, लीलाधर संपा॰, वर्तमान साहित्य : शताब्दी कविता विशेषांक (मई–जून, 2000), पृष्ठ– 582
6. कौशल, संजीव, उंगलियों में परछाइयाँ, पृष्ठ–15
7. वही, पृष्ठ–11
8. वही, पृष्ठ–11
9. वही, पृष्ठ–12
10. वही, पृष्ठ–12
11. कौशल, संजीव, देखें, भूमिका, उँगलियों में परछाइयाँ, पृष्ठ–5
12. कौशल, संजीव, उँगलियों में परछाइयाँ, पृष्ठ–36
13. वही, पृष्ठ–46
14. कुमार, विजय, संपादक, सदी के अंत में कविता (उद्भावना कवितांक), (अक्तूबर 1997–मार्च 1998), पृष्ठ–290
15. कौशल, संजीव, उँगलियों में परछाइयाँ, (2017), भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, पृष्ठ–30
16. त्रिपाठी, विश्वनाथ, गंगा स्नान करने चलोगे? (2017), भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, पृष्ठ–19
17. श्रीवास्तव, परमानंद संपा॰, देखें, भूमिका, समकालीन हिंदी कविता, (1990), साहित्य अकादमी, दिल्ली, पृष्ठ–13
18. कौशल, संजीव, उँगलियों में परछाइयाँ, पृष्ठ–77
19. वही, पृष्ठ–79
20. वही, पृष्ठ–72
21. बच्छावत, मानिक संपा॰, समकालीन सृजन (कविता इस समय) अंक 23, वर्ष 2006, पृष्ठ–27

22. कौशल, संजीव, उँगलियों में परछाइयाँ, पृष्ठ–69
23. वही, पृष्ठ–47
24. वही, पृष्ठ–124
25. वही, पृष्ठ–125
26. कौशल, संजीव, देखें भूमिका, उँगलियों में परछाइयाँ, पृष्ठ–6
27. कौशल, संजीव, उँगलियों में परछाइयाँ, पृष्ठ–129
28. विश्वास, विनय, आज की कविता, (2009, प्रथम संस्करण), राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ–218
29. कौशल, संजीव, उँगलियों में परछाइयाँ, पृष्ठ–90
30. वही, पृष्ठ–31